

अध्याय छठा

॥श्री गणेशाय नमः॥ श्री सरस्वत्यै नमः॥ श्री सिद्धारूढाय नमः॥

"कई लोग अनेक जन्मों में विवेक तथा वैराग्यपूर्ण व्यवहार करते हैं, परंतु उन्हें आत्मज्ञान नहीं हुआ रहता। जिस जन्म में उन्हें सतगुरुजी की कृपा का प्रसाद प्राप्त होता है, उस जन्म में उनका विवेक तथा वैराग्यपूर्णता से किया व्यवहार सफल हो जाता है और वे आत्मज्ञानी होते हैं।"

सभी उपनिषदों का अर्थ जिनकी हाथ की मैल थी और जो स्वयं ही ब्रह्मतत्त्व थे, ऐसे सिद्धारूढजी पूरे जगत की ओर अद्वैत भाव से देखते थे तथा मुमुक्षु जनों को दीक्षा देते और हालाँकि उनके मन में ऐक्यभाव था फिर भी अनन्य भाव से शरण आए शरणागत का वे प्रतिपालन करते थे। अस्तु। कुछ दिन सिद्धनाथजी चिंतामणी आश्रम में रहे। वहाँ उन्हें मिलने हेतु प्रतिदिन जिज्ञासू जन आते थे और सिद्ध उनके प्रश्नों के उचित उत्तर देकर उनके संदेहों का निवारण करते थे। ये वार्ता किसी शास्त्री को पता होने के पश्चात उन्होंने आकर सिद्धारूढजी से पूछा, "अब आप ये बताईए की मुमुक्षा यह धर्म या वह एक गुण है। तब अवधूत ने कहा, "मुमुक्षा यह निश्चित रूप से धर्म नहीं है। हमेशा गर्मी प्रदान करने का ही अग्नि का गुण है, परंतु जीवात्मा के मन की स्थिति हमेशा मुमुक्षा की नहीं रहती। अगर मुमुक्षा यह मनुष्य का गुण होता, तो बार बार साधना नहीं हो पाती या साधना की आवश्यकता ही न रहती। परंतु मुमुक्षा यह भाव पूर्णतः आदत से तथा साधना करने से मनुष्य को प्राप्त होता है, ये समझ लो। अगर तुम पूछोगे की यह भाव कबतक मन में रहता है तो उसका उत्तर यह है की जबतक मनुष्य स्वयं सतगुरुजी को शरणागत होकर सद्गुरुजी से उपदेश प्राप्त नहीं करता या जबतक वह महावाक्य अपने कानों से नहीं सुनता। उसके पश्चात मुमुक्षु की वृत्ति 'अहं ब्रह्मास्मि (यानी मैं स्वयं ब्रह्म या चैतन्य हूँ इसका अनुभूतिव्दारा पाया गया ज्ञान)' होती है। पूर्णरूपसे ज्ञानप्राप्ति होने के कारण उसे अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) ऐसा कहते हैं। इस से शरीरभाव पूर्ण रूप से नष्ट होता है और जब यह स्थिति स्थिर होती है तब जैस सागर में जल की बूँद एकरूप होती हो, उस प्रकार जीवात्मा ब्रह्म में एकरूप हो जाती है।" ये बातें सुनकर शास्त्रीजी मन ही मन संतुष्ट हुए और तसल्ली से उन्होंने सिद्ध महात्मा

को प्रणाम करके अपने घर लौट। उसके पश्चात पिच्चंडय्या नाम के एक शास्त्रीजी बड़ी तेजी से सिद्धारूढजी के पास आए और उन्होंने पूछा, "इस भौतिक जगत का आधार अगर पृथ्वी है तो पृथ्वी को किस का आधार है?" सतगुरुजी ने उत्तर दिया, "पृथ्वी जलपर रहती है। पाराशर श्रुति में 'तदाप्यं पृथिवी' ऐसा वचन है। इस जल को अग्नि का आधार होने के कारण 'अग्निरापः' ऐसा श्रुतिवचन है। अग्नि वायु से उत्पन्न होती है इसलिए 'वायोरग्नि' ऐसा श्रुतिवचन है। वायु को आकाश का आधार होने के कारण प्रत्यक्ष वेदों में 'आकाशाव्दायुः' ऐसा वचन है और ज्ञानी लोग उसे आकाश का श्वास इस प्रकार संबोधित करते हैं। उस आकाश का अधिष्ठान (वासस्थान) यह साक्षात् अक्षर (अविनाशी) परमात्मा ही है। श्रुतिवचन है कि, 'तस्माच्चा एतस्मादात्मनः॥ आकाश संभूतः (अर्थः इसीलिए अपने इस आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ है)'" ये सुनकर शास्त्री अति आनंदित हुए और घर लौटकर सिद्धनाथ जी के लिए पकवान लेकर आए; सिद्धनाथजी ने आनंद से उसका सेवन किया। उसपर और एक मनुष्य आकर उन्हें पूछने लगा, "मनुष्य का मन हमेशा चंचल होने का क्या कारण है?" सिद्धनाथजी ने उत्तर दिया, "एक वायु और दूसरा रजोगुण ये दोनों मिलकर मनुष्य का मन चंचल करते हैं। वायु का आधा हिस्सा लेकर मन का निर्माण होने के कारण, वायु के स्वभावानुसार मन को चंचलता प्राप्त हुई और इसीलिए मनुष्य का मन एक क्षण भी स्थिर न रहते हुए हमेशा विविध प्रकार के विषयोपभोगों की वस्तुओं के पीछे भागता रहता है। रजोगुण के कारण मनुष्य के मन में विविध प्रकार के संदेह मन में आते हैं। इन दोनों में से मन की चंचलता कष्टकारक महसूस होने वालों को पतंजली योगशास्त्र के अनुसार प्राणायाम करना चाहिए, जब किसी विकल्प के कारण अगर मनुष्य को किसी विषय (मुद्दे) के बारे में मन ही मन निर्धार करना नामुमकिन हो रहा हो तो उसको अपना मन आत्मानात्म विचारों में लगाना चाहिए। उसी प्रकार दृश्य जगत के फैलाव में क्या सत्य और क्या मिथ्या है, यह जानकर मनपर प्रतिबंध लगाना चाहिए। इस प्रकार ये विवेक, सतगुरुजी से बोधन तथा पवित्र विचारों का चिंतन इनसे प्राप्त होता है।" ये सुनकर वह हर्षित होकर बोला, "मुझे सतगुरुजी मिल गए, आज मेरा भाग्योदय होने के कारण मुझे सतगुरुजी के दर्शन हुए।

अभी उन्हें ही विवेक का अर्थ पूछना अच्छा रहेगा। सतगुरु महाराजजी, दृश्य का क्या अर्थ होता है, यह मुझे आप समझाईए।" तब सतगुरुजी ने उसे कहा, "परमात्मा का प्रतिबिंब होनेवाला जीवात्मा हृदयांतर स्थित मन की वृत्तियाँ तथा इंद्रियों के साथ जब घड़े जैसी वस्तु को देखता है, तब उस वस्तु को दृश्य कहते हैं। तब वे सारे इंद्रिय दृश्य देखनेवाले होती हैं। दृश्य देखनेवाले इंद्रिय में स्थित दोष को जानने वाला मन भी दृश्य देखनेवाला हो जाता है। आगे, मन में स्थित संदेहादि दोष जानने वाली आत्मा भी दृश्य देखने वाली हो जाती है। ऐसी यह आत्मा, निश्चितरूप से निद्रा के समय लीन होनेवाली बुद्धि के अधीन रहती है। उस आत्मा का परमार्थरूप जो परमात्मा है, वह अपनेआप ही दृश्य देखनेवाला द्रष्टा हो जाता है। परमात्मा ब्रह्मरूप होने के कारण, उसके सिवाय अन्य कोई भी द्रष्टा नहीं होता। हृदय में स्थित यह निश्चल द्रष्टा परमात्मा के लिए 'अंदर' और 'बाहर' इस प्रकार के भेद कभी नहीं होते। जिस शुद्ध चैतन्य को परब्रह्म कहते हैं, वह सदा ही तुम स्वयं ही हो, इसलिए तुम्हारे सिवाय द्रष्टा अन्य कोई भी नहीं है। ये जानने से तुम धन्य हो जाओगे।" सिद्धनाथजी के ये शब्द सुनकर मलयनाथ नाम का एक ब्राह्मण बोला, "हे सतगुरुनाथजी, आपकी कृपा से मैं धन्य हो गया। आपके अमृत के समान वचन सुनकर मेरे पितृगण भी पूर्णरूप से धन्य हो गए।" उसपर सतगुरुनाथजी को प्रणाम करके मलयनाथ घर लौटा। पाँचवे दिन रामभट्ट नाम का एक सज्जन आया और उसने सतगुरुजी से कहा, "गुरुजी, कृपा करके बताईए की इस जगत में कौनसा प्रकाश भासमान होता है?" उसपर सतगुरुजी ने कहा, "दिन में सूरज या रात में चाँद तथा तारें ये कैसे प्रकाशित होते हैं अथवा दिखाई देते हैं?" रामभट्ट ने कहा, "आँखों से," सिद्धारूढजी ने "आँखे किस प्रकार बंद करते हैं?" ऐसा पूछते ही, उसने कहा, "अपने वश में होनेवाली बुद्धि से। परंतु बुद्धि किस वस्तु से प्रकाशित होती है?" सिद्ध बोले, "अहंकारयुक्त आत्मा से। जब अहंकार समाधि में लीन होता है, तब केवल एकमात्र आत्मा रहती है। निश्चल तथा मूल ज्ञान से परिपूर्ण तुम्हारी आत्मा वही स्वयं प्रकाशित परमात्मा या सच्चिदानंद परब्रह्म है, यह जान लो।" ये सुनते ही वह आत्मानंद में लीन हो गया, तत्पश्चात् सिद्धनाथजी के चरणों में माथा टेककर बोला, "आज मैं कृतार्थ हुआ," और अति आनंदित होकर घर

लौटा। छठे दिन चिदंबर दीक्षित नाम का एक सज्जन सिद्धारूढ़जी से मुलाकात करने आया। उसने उनसे पूछा, "'तत्त्वमसि' इसका क्या अर्थ है?" सिद्धनाथजी ने कहा, "इस का अर्थ होता है की 'तुम्ही ब्रह्म हो'," ऐसा उत्तर सुनते ही वह बोला, "इस वचन का यह अर्थ नहीं है। मैं सही अर्थ बताता हूँ। कर्म करनेवाले की आत्मा देवलोक जाती है। वहाँ पहुँचकर वह देवत्व को प्राप्त करके शुद्ध होती है, ऐसा इस वचन का अर्थ होता है।" यह सुनकर अवधूत ने कहा, "ऊपर दिया हुआ वचन यह ज्ञानकांड (जीवात्मा तथा ईश्वर इन दोनों का आपसी संबंध, जगत, मोक्ष और मोक्षप्राप्ति के मार्ग विषद करने वाले वेदांत अथवा उपनिषद के हिस्से को 'ज्ञानकांड' कहते हैं) पर आधारित होते हुए किसी भी वस्तु की स्तुति करने के लिए नहीं लिखा गया। उसका कारण सुन लो। जिस वस्तु या व्यक्ति के साथ द्रव्य, गुण, कर्म, जाति, धर्म, वर्ण तथा आश्रम आदि जुड़े हैं, ऐसी वस्तुएँ तथा व्यक्ति स्तुत्य हैं। उपर दिया हुआ वचन यह पूर्णतः स्वतंत्र तथा भेदभाव रहित (सब के अंदर एक जैसा) आत्मा के लिए लिखा गया है। यह वचन स्तुति प्रदर्शित करने वाला न होकर जिस में मोक्ष की तड़प है, ऐसा मनुष्य यानी मुमुक्षू को उपदेश करने के लिए है। अगर यह वचन स्तुति प्रदर्शित करने के लिए होता, तो कर्म करना यही एक मुख्य कर्तव्य बनकर रह जाता और ज्ञानी व्यक्ति जीवनभर केवल कर्म करने में ही अपना जीवन व्यतित करते। परंतु ऐसा कहीं भी नहीं पाया जाता, ज्ञानी व्यक्ति कर्ममार्ग में तल्लीन नहीं होते। इसका अर्थ, यह वचन उपासना की दृष्टि से व्यक्त किया गया है," ऐसा अवधूत ने कहा। उसपर सिद्धारूढ़जी ने दीक्षित से पूछा, "'तुम्ही ब्रह्म हो' इस उपासना के अनुसार तुम स्वयं को ब्रह्म (शुद्ध चैतन्य) से अलग समझते हो या 'अहंग्रह' उपासना (स्वयं की आत्मा को एक वस्तु समझकर उसपर ध्यानधारणा करना, परंतु शुद्ध आत्मा यह कोई ध्यानधारणा करने की वस्तु न होने के कारण, विविध निशानों का उपयोग किया जाता है।) करते हो? क्योंकि इन दोनों उपासनाओं में मानसिक रूप से कर्म किया जाता है और हमारे शास्त्रों में लिखा गया है की ज्ञानी व्यक्ति के लिए कर्म करना निषिद्ध है। इसके लिए वेदों में एक प्रमाण है, सुन, "न कर्मणा न प्रजया न धनेन त्यागेनैकेनामृत्वमानुशः॥" इसका अर्थ यह है की, विधिपूर्वक शास्त्रों के अनुसार

कर्मकांडों के करने से या पुत्र पौत्रों से या धनप्राप्ति करने से जीवात्मा को कभी भी अमरता प्राप्त नहीं होती। ऐसी अमरता केवल सर्वसंग परित्याग से ही प्राप्त होती है। हे बुद्धिमान मनुष्य, यह वेदवचन केवल त्यागपर ही प्रमाणित है ऐसा अगर तुम कहोगे तो इस वचन का शेष भाग सुन। वह सुनते ही तुम्हारे मन का संदेह दूर हो जाएगा। 'ज्ञानादेव तु कैवल्यं नान्यः परम अयनाय विद्यते॥' यानी केवल ज्ञानप्राप्ति से ही मोक्ष (कैवल्यं) प्राप्ति होती है। इसके सिवाय अन्य कोई मार्ग ही नहीं है। इसीलिए यह वचन वेदसम्मत होते हुए ज्ञानप्राप्ति के लिए ही है। अगर यह वचन कर्म से संलग्न (यानी कर्म करने की आज्ञा करनेवाला) होता तो निश्चयपूर्वक वह अज्ञान निवारण करने में अणुभर भी काम न आता।" यह सुनकर दीक्षित संतुष्ट हुए। सातवे दिन प्रातःकाल के समय सिद्धारूढ महाराजजी सभामण्डप में विराजमान हुए। उस समय तिरिकभट ने उन्हें प्रश्न पूछा, "ब्रह्म तथा आत्मा ये दोनों एक है यह किन लक्षणों से जाना जा सकता है?" उसपर महात्मा सिद्धारूढजी ने कहा, "जो सुखदायी, शाश्वत (चिरकाल तक), ज्ञानरूप, सर्वगत तथा नाम और रूप का आधार है, जो बुद्धि की समझ के परे होकर बुद्धि को प्रेरणा देता है, जो शुद्ध होकर अमर्याद है और जो उपर दिए हुए वचन का पूर्ण रूप से अर्थ व्यक्त करता है तथा उपर कथन किए हुए सभी लक्षणों से युक्त यह आत्मा है। अगर ब्रह्म को 'केवल सुख' कहा होता तो, विषयोपभोग में सिर्फ क्षणिक सुख मिलता है इसलिए उसे (ब्रह्म को) 'नित्य (शाश्वत)' यह लक्षण निश्चित रूप से जोड़ा गया है। अगर देखा जाए तो, आकाश, दिशाएँ, समय और मन ये भी चिरकाल ही हैं, परंतु वे ज्ञानरूप नहीं हैं, इसलिए 'ज्ञान का रूप' यह ब्रह्म का लक्षण है। सूरज, चाँद और अग्नि ये भी प्रकाशमान ही हैं, परंतु केवल ब्रह्म को 'सर्वगत (सर्वव्याप्त)' यह लक्षण जोड़ दिया जाए, तो अतिशयोक्ति का दोष नहीं लगता। ऐसा यह ब्रह्म अनेक लक्षणों से सुशोभित होकर, विषयों (तमाम वासनाओं) के दोष नष्ट होने के पश्चात् प्राप्त होता है।" यह सुनकर तिरिकभट्ट ने पूछा, "'आनंद' यह गुण कैसा है?" सिद्धजी ने कहा, "आनंद यह गुण नहीं है। अतिथि के समान गुणों का आनाजाना रहता है। जिसे आत्मप्रेम है, उसका आनंद कभी भी नष्ट नहीं होता।" उसपर तिरिकभट्ट ने प्रश्न किया, "अगर ब्रह्म मनुष्य की बुद्धि के (समझ के बाहर) परे है, तो ब्रह्मानंद

प्राप्त किए बिना बुद्धि में स्थित दुख का कैसे निवारण होगा?" सिद्धजी ने कहा, "तुम सत्य कह रहे हो। जबतक बुद्धि अशुद्ध है, तब तक निश्चित रूप से ब्रह्मप्राप्ति नहीं होती, परंतु जिस मनुष्य की बुद्धि वेदांत के श्रवण से पूर्णरूप से शुद्ध हुई हो, ऐसे मनुष्य (बुद्धि) को प्रत्यक्ष ब्रह्म दिखता है। 'त्वं' इस शब्द का अर्थ यह है की हमें स्वयं ही अपनी अशुद्ध बुद्धि का अन्वेषण (यानी अपने दोष स्वयं ही जान लेना) करना चाहिए, तत्पश्चात् 'तत्' इस पदपर ध्यान केन्द्रीभूत करने से अज्ञान के सारे पटल झड़ जाते हैं। उसी क्षण निश्चित रूप से ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। उसके पश्चात् निश्चित रूप से दुख पूर्णरूप से नष्ट हो जाता है।" यह सुनकर तिरिकभट्ट हर्षित हो गया। आठवे दिन जब सिद्ध अवधूत मंदिर में बैठे थे, तब बिन माँगे ही उन्हें नैवेद्य प्राप्त हुआ। उसपर उन्होंने भोजन ग्रहण करके जल प्राशन किया। उस समय सांप्रदायिक तथा रूढ़िवादी संस्कारों वाला गोविंदभट्ट नाम के एक ब्राह्मण ने उन्हें देखकर पूछा, "हे सिद्धपुरुष, ज्ञानी मनुष्य को संपूर्ण ज्ञानप्राप्ति के पश्चात् भी भूख प्यास के कष्ट होते हैं तथा प्रारब्ध के कष्ट भी सहने पड़ते हैं, ऐसा कहना उचित होगा। आपके अनुभव से ही यह स्पष्ट हो रहा है की, वृत्ति ब्रह्मानंद में लीन हो जाने से भी दुख का निवारण होकर पूर्ण रूप से सुख की प्राप्ति होती है, ये सारे वचन झूठे हैं।" उसकी बातें सुनकर सिद्धारूढजी ने उसे पूछा, "तुम्हारे इस प्रश्न से तुम आत्मचैतन्य पर अभियोग (इल्जाम) लगा रहे हो या इस मर्त्य शरीर को ही तुम ज्ञानी मनुष्य समझ रहे हो? क्योंकि आत्मचैतन्य को किसी भी प्रकार का दुख नहीं होता। क्योंकि यह आत्मा षड्विधरहित होकर पाँच कोशों से बने शरीर तथा त्रिगुणों के परे है। अगर शरीर को देखकर तुम यह इल्जाम (आरोप) लगा रहे हो, तो मैं तुम्हें बता देता हूँ की, आत्मज्ञान प्राप्त हुए मनुष्य के लिए साधारण लोगों के समान शरीर धर्म नहीं होते। हालाँकि शरीर प्रारब्ध के अधीन होता है, लेकिन चैतन्य के लिए सुख, थकान आदि नहीं रहते। जब किसी मनुष्य को मुमुक्षू दशा प्राप्त होती है, उसी समय वह शरीर और चैतन्य ये दोनों एक ही हैं यह मानने से इन्कार करता है। ऐसे हालात में स्वरूपज्ञान में निमग्न हुए ज्ञानी मनुष्य को शरीर के दुख, कष्ट होते हैं, यह कैसे कह सकते हो?" उसपर गोविंदभट्ट ने विनम्रता से हाथ जोड़कर सिद्धारूढजी को प्रणाम किया और कहा,

"हम सांप्रदायिक तथा रूढ़िवादी होने के साथ साथ देहबुद्धि वाले मनुष्य हैं, इसलिए, हे स्वामीजी, हम वेदों के वचन बिलकुल नहीं जानते। मेरी अपनी स्वतंत्र विचारशक्ति ही नहीं है, आपके केवल दर्शन मात्र से मैं धन्य हो गया।" ऐसा कहते हुए प्रणाम करके वह ब्राह्मण उठकर चला गया। नवे दिन एक महिला आई और उसने विनम्रता से सिद्धारूढ़जी को प्रणाम करके कहा, "हे स्वामीजी, मैं अत्यंत दीन और अज्ञानी व्यक्ति हूँ। जिस मार्ग से चलकर मैं धन्य हो जाऊँगी, ऐसा मार्ग आप मुझे दिखाईए।" ऐसा कहते हुए उसने सतगुरुजी के चरणों को स्पर्श किया। तब सिद्धनाथजी ने उसे कहा, "हररोज प्रातःकाल उठकर स्नान करने के पश्चात भस्म लेपन तथा रुद्राक्षमाला धारण करो। तत्पश्चात अंगन्यास तथा करन्यास (कुछ निश्चित मंत्रों का उच्चारण करते हुए स्वयं के शरीर के विविध इंद्रियों को हाथ से स्पर्श करना) करके शांत मन से भगवान की पूजा करो। उसपर हमेशा 'ॐ नमः शिवाय' इस पंचाक्षरी मंत्र को जप करो, जिससे तुम निश्चितरूप से मुक्त हो जाओगी।" यह सुनकर वह महिला आनंदित होकर सतगुरुजी को प्रणाम करके घर लौटी।

श्रीसिद्धनाथजी उस जगह साधुसज्जनों के मेले में नौ दिन रहे। जब सिद्धनाथजी वहाँ से पुनः तीर्थ के लिए निकले, तब उस गाँव के सभी गाँववाले गाँव के प्रवेशद्वार तक उनके साथ आए। वहाँ छोटे नारायणजी के दर्शन करते हुए भगवान महादेव के मनोहर मंदिर जाकर श्रीशिवजी के दर्शन करने के पश्चात सिद्धारूढ़जी आगे निकले। उसके बाद उन्होंने ठस्करा और मस्करा ये स्थल देखे तथा तिरवटारी कृष्णमूर्ति के दर्शन किये। तत्पश्चात वे पद्मनाभपुरी पधारे और उन्होंने वहाँ अनंतशायी की पूजा की। उस समय वहाँ ब्राह्मण भोजन हो रहा था। सिद्धारूढ़जी ब्राह्मणों के पाँति में जाकर बैठ गये। तब चार ब्राह्मण उन्हें बोले, "तुम्हारे शरीरपर तो शूद्रों के निशान दिखाई पड़ रहे हैं, तो तुम ब्राह्मणों के पाँति में आकर कैसे बैठ गये?" उसपर सिद्धनाथजी ने कहा, "आपको ब्रह्म चिह्न दिखाई नहीं देते।" तब ब्राह्मणों ने कहा, "अगर तुम ब्राह्मण होते तो अन्य ब्राह्मणों के समान तुम्हारे सिरपर चोटी (शिखा) तथा शरीरपर जनेऊ (यज्ञोपवीत) क्यों नहीं दिखाई पड़ रहा है?" उसपर सन्यासी सिद्धारूढ़जी ने उन कट्टरपंथियों से वेदांत का उदाहरण देकर कहा, "अशिख

अयज्ञोपवीत यति यादृच्छिको भवते,' यानी जिस यति की शिखा और जनेऊ नहीं है वह पूर्णरूपसे आसक्तिरहित हो।" उसपर ब्राह्मणों ने कहा, "परंतु यति के समान आपके पास दंड तथा कमंडलु भी तो नहीं हैं।" सिद्धनाथजी ने कहा, "हमारा ज्ञान यहीं हमारा दंड है। सर्वत्रसमभाव (सभी प्राणियों के साथ एकसमान व्यवहार करना) यही हमारी कफनी है। वैराग्य यहीं हमारा भस्मलेपन, तथा तत्व और विवेक यहीं हमारे कमंडलु हैं।" सिद्धारूढ़जी का यह कथन सुनकर वे ब्राह्मण दंग रह गये और आपस में कहने लगे की वह पूर्ण रूप से ब्रह्मज्ञानी है और उसे अवश्य भोजन देना चाहिए। अतिथि परमेश्वर का ही रूप होने के कारण उसे पूर्णरूप से तृप्त करने से गृहस्थ को उत्तम धनप्राप्ति होती है, और अगर ऐसा न करें तो उसका संपूर्ण धन नष्ट हो जाता है। वहाँ भोजन करने के पश्चात सतगुरुनाथजी जनार्दनस्वामी क्षेत्र गये। पर्वतशिखर पर स्वामीजी की आचमनमुद्रा देखकर सिद्धनाथजी ने सोचा की ज्ञानी व्यक्ति की नजर में यह जगत केवल एक अंजलीभर ही तो है। वहाँ से वह श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए उडपी तीर्थ गये। वहाँ जाकर उन्होंने कहा की यह परमात्मा (क्षेत्रज्ञ) ब्रह्मरूप है, यहीं सारे ब्रह्मांड को व्याप्त किए हुए है। इस सुंदर तथा आकर्षक जगत का निर्माण उसी ने किया होने के कारण उसका नाम कृष्ण है। इस प्रकार चिंतन करके तथा कुछ समय समाधि स्थिति में बिताकर वहाँ से, आनंद यही जिनका स्वरूप है वह स्वामीजी, आगे चल पड़े। अस्तु। जिसका श्रवण करने से सभी पाप भस्म हो जाते हैं, ऐसे इस श्री सिद्धारूढ़ कथामृत का मधुर सा यह छटा अध्याय श्री शिवदास श्री सिद्धारूढ़ स्वामीजी के चरणोंमें अर्पण करते हैं। सबका कल्याण हो।

॥ श्री गुरुसिद्धारूढ़चरणारविंदार्पणमस्तु ॥